किरातार्जुनीयम् - प्रथम सर्ग
पद्यांश व्याख्या

कृतप्रणामस्य महीं महीभुजे
जितां सपत्नेन निवेदयिष्यतः ।
न विव्यथे तस्य मनो न हि प्रियं
प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः ॥2॥

अन्वयः- कृतप्रणामस्य सपत्नेन जितां महीं महीभुजे निवेदयिष्यतः तस्य मनः न विव्यथे। हि हितैषिणः मृषा प्रियं प्रवक्तुं न इच्छन्ति ॥

भाषार्थ :- (कृतप्रणामस्य) राजा युधिष्ठिर को प्रणाम करने पर, ~~शत्रु~~ ~~द्वारा~~ (सपत्नेन) शत्रु द्वारा (जितां महीम्) जीती गई पृथ्वी का वृत्तान्त (महीभुजे) राजा से (निवेदयिष्यतः) निवेदन करते हुए (तस्य) उस वनेचर दूत का (मनः) मन (न विव्यथे) दुःखी नहीं हुआ। (हि) क्योंकि (हितैषिणः) हित चाहने वाले (मृषा) झूठ (प्रियम्) प्रियवचन (प्रवक्तुं न इच्छन्ति) बोलने की इच्छा नहीं करते हैं।

भावार्थ :- इस पद्य में यह बताया गया है कि युधिष्ठिर से शत्रु द्वारा पृथ्वी की विजय का समाचार बताने वाले उस वनेचर का मन दुःखी नहीं हुआ, क्योंकि हित चाहने वाले झूठी प्रियबात नहीं कहते।

टिप्पणी :- 'महीं महीभुजे' में 'मही' पद की आवृत्ति हुई है, अतः पदानुप्रास या लाटानुप्रास है। काव्यलिंग नाम का अलंकार भी प्रथम कथन को दूसरे कथन के द्वारा कारण निर्देश के साथ समर्थन किया गया है।

पदव्याख्या :- कृतप्रणामस्य - कृतः प्रणामः येन सः कृत-प्रणामः तस्य (बहुव्रीहि)। कृ+क्त = कृत, प्र+नम+घञ् = प्रणाम। महीभुजे = महीभुज् शब्द का चतुर्थी एकवचन। महीं भुनक्तीति महीभुक्, तस्मै। मही+क्विप् प्रत्यय। जितम् = जि+क्त+टाप्। सपत्नेन = समाने वस्तुनि पतति इति सपत्नः। स+पत्+न अथवा 'सपत्नीव सपत्नः' सपत्नी+अ। निवेदयिष्यतः = निवेदन करनेवाले निव+विद्+णिच् भविष्यत्कालीन शतृ प्रत्यय। न विव्यथे = व्यथ् धातु लिट् लकार। तस्य मनः = उस वनेचर का मन। मुख्य उपवाक्य है। तस्य मनः न विव्यथे। उसका मन व्यथित नहीं हुआ। हि = क्योंकि (अव्यय शब्द है), प्रियं प्रवक्तुम् = प्रिय बोलने के लिए प्र+वच्+तुमुन्। इच्छन्ति = चाहते हैं। इच्छा करते हैं। इष्+लट् बहुवचन। मृषा = मिथ्या, झूठ (अव्ययपद है)। (हितैषिणः) हित चाहने वाले, हित+इष्+णिनि प्रत्यय हितम् इच्छन्ति इति। 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' से णिनि। इति।

डॉ० ओम प्रकाश आर्य
महाराजा कॉलेज, आरा।